नियमसार, ९७ गाथा। टीका फिर से।

यहाँ, परम भावना के सम्मुख ऐसे ज्ञानी को शिक्षा दी है। परमभाव, ऐसा पारिणामिकस्वभाव। सहज नित्य ध्रुवस्वभाव। ज्ञायकस्वभाव। वह परमपारिणामिक त्रिकाल स्वभाव, जो पलटता भी नहीं और पलटते में आता भी नहीं—ऐसा जो त्रिकाली परमभाव। भगवान का अर्थ भाव का धारक भाववान है। टीका में आधार लेंगे। भाववान आत्मा, उसका भाव, वह परमभाव है। उसके सन्मुख, उसके सन्मुख हुआ है। वह परमात्मस्वरूप है जो शुद्ध चैतन्यस्वरूप के सन्मुख हुआ है, उस ज्ञानी को शिक्षा देते हैं। उस ज्ञानी को समझाते हैं अर्थात् कि उसे कैसे होता है, वह बताते हैं। तत्त्वज्ञानी को कैसे होता है और क्या होता है—यह बताते हैं।

जो कारणपरमात्मा... लो, आया। कारणपरमात्मा त्रिकाली आत्मा, त्रिकाली

ध्रुवस्वभाव, जो परमपारिणामिकभाव, उस त्रिकाली को यहाँ कारणपरमात्मा कहा जाता है। एक समय की जो पर्याय और कारणपरमात्मा दो होकर प्रमाण का विषय द्रव्य है; तो यहाँ निश्चय का-सम्यग्दर्शन का विषय बतलाना है; इसलिए कारणपरमात्मा, त्रिकाली वस्तु जो शुद्ध ध्रुव कारणपरमात्मा है। वह **(१) समस्त पापरूपी बहादुर....** पापरूपी बहादुर **शत्रुसेना की विजय-ध्वजा को लूटनेवाले,...** आहाहा! अपना जो भाव है, वह कहते हैं कि **पापरूपी बहादुर शत्रुसेना की विजय-ध्वजा को लूटनेवाले, त्रिकाल-निरावरण, निरंजन, निज परमभाव को कभी नहीं छोड़ता;...** आहाहा! ऐसा जो भगवान शुद्धस्वरूप, एक समय की पर्यायरहित, वह अपना त्रिकाली स्वभावभाव, कारणपरमात्मा, उसका जो स्वभावभाव, वह **त्रिकाल-निरावरण, निरंजन, निज परमभाव को...** अपना परमभाव, शाश्वत रहनेवाला ध्रुवस्वभाव, नित्यस्वभाव, उसे **कभी नहीं छोड़ता;...** वस्तु नित्य है। कब छूटे ? आत्मा त्रिकाली नित्य वस्तु है। यह विचार और मोक्ष का मार्ग और मोक्ष, यह सब पर्याय में होता है। संसार, संसार का अभाव—मोक्ष—यह सब पर्याय में-अवस्था में होता है। वस्तु है, उसमें यह है नहीं। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म तत्त्व है।

कारणपरमात्मा ने कभी भी अपने स्वभावभाव को छोड़ा नहीं है। **नहीं छोड़ता;...** छोड़ा नहीं - ऐसा भी नहीं कहा। **नहीं छोड़ता;...** आहाहा! देहदेवल में राग के विकल्प से भी भिन्न, एक समय की वर्तमान राग को जाननेवाली पर्याय, उस पर्याय से भी भिन्न, ऐसा जो त्रिकाली स्वभावभाव वस्तु, उसे कभी भी छोड़ा नहीं। छोड़ता नहीं। ध्रुवस्वरूप है, वह छूटे कहाँ से ? आहाहा! वह सम्यग्दर्शन का विषय है। त्रिकाली द्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। सम्यग्दर्शन है पर्याय; परन्तु पर्याय, सम्यग्दर्शन का विषय नहीं है। समझ में आया ? आहाहा!

सम्यग्दर्शन, क्षायिक समकितदर्शन, वह भी कहीं सम्यग्दर्शन का विषय नहीं है। अरे! केवलज्ञान और केवलदर्शन, वह भी सम्यग्दर्शन का विषय नहीं है। आहाहा! वह तो प्रगट हुई पूर्ण पर्याय है। यह तो त्रिकाली ध्रुवस्वभाव, जिसने कभी छोड़ा नहीं... आहाहा! **नहीं छोड़ता;...** और **(२) पंचविध (-पाँच परावर्तनरूप) संसार की वृद्धि के कारणभूत,...** द्रव्यपरावर्तन, क्षेत्रपरावर्तन, काल, भव और भाव (परावर्तन)। इस पाँच **संसार की वृद्धि के कारणभूत, विभावपुद्गलद्रव्य के संयोग से जनित...** पुद्गलकर्म

है, उनके संयोगजनित। उत्पन्न अपने में होते हैं, परन्तु निमित्त कर्म हैं। निमित्त है, इसलिए निमित्त से होता है-ऐसा नहीं है। नीचे (फुटनोट) है।

रागादिपरभाव की उत्पत्ति में पुद्गलकर्म निमित्त बनता है। यह स्वयं विकार करता है, तब उसे निमित्त बनते हैं। आहाहा! ऐसा जो विभाविकभाव, ऐसे द्रव्यकर्म के संयोग से, जड़कर्म के संयोग से... आहाहा! **जनित रागादि परभाव को ग्रहण नहीं करता;...** आहाहा! जिसने अपना त्रिकाली ज्ञायकभाव, परमस्वभावभाव छोड़ा नहीं, और पुद्गलजनित रागादिभाव कभी ग्रहण नहीं किये। द्रव्य से पुद्गल के निमित्त और विकारभाव नैमित्तिक। उस विकारभाव को कभी आत्मा ने ग्रहण नहीं किया। आहाहा! तब यह संसार किसका? यह संसार पर्याय का। द्रव्य को संसार नहीं। द्रव्य में मोक्ष भी नहीं और संसार भी नहीं। द्रव्य तो एकरूप त्रिकाली परमभाव... आहाहा! ऐसी व्याख्या।

यह शरीर, वाणी, मन, तो नहीं। वे तो जगत की चीज़ें हैं। कर्म, वह जगत की चीज़ है, परंतु कर्म के संयोग से उत्पन्न हुई पर्याय; वह कर्म तो निमित्त है। उपादान तो अपनी पर्याय में उत्पन्न हुआ विकार अपना है। ऐसी पर्याय को-विकार के भाव को ग्रहण नहीं करता। ऐसे रागादि परभाव को द्रव्य ने कभी ग्रहण ही नहीं किया। द्रव्य-वस्तु जो भगवान आत्मा त्रिकाली निरावरण है। सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्षप्रतिभासमय अविनश्वर ऐसा जो भाव त्रिकाल। उसे-अपने भाव को छोड़ा नहीं, छोड़ता नहीं। रागादि पुण्य-पाप, दया, दान, विकल्प है, वह कर्म संयोगजनित विकार है। उसे ग्रहण नहीं किया। आहाहा!

संसार की वृद्धि के कारणभूत,... पुद्गल के निमित्त से होता रागादि परभाव... आहाहा! उसे आत्मा ग्रहण नहीं करता। चिदानन्द भगवान परमस्वभाव पारिणामिकभाव, ज्ञायकभाव, अप्रमत्त-प्रमत्त पर्यायरहित भाव, त्रिकाली भाव ने राग को, विकार को, संसार को, उदयभाव को कभी देखा नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है। दुनिया से अलग प्रकार है। परमभाव को छोड़ता नहीं। **नहीं छोड़ता;...** ऐसा कहा है। परमभाव को छोड़ता नहीं और कर्मसंयोगजनित विकारभाव को ग्रहण नहीं करता। आहाहा! द्रव्य के स्वभावभाव को, द्रव्य जो वस्तु, उसका जो स्वभाव। स्व-भाव, उसे द्रव्य ने छोड़ा नहीं और कर्म जो परवस्तु संयोग, उससे उत्पन्न हुआ विकार, उसे द्रव्यस्वभाव आत्मा ने ग्रहण नहीं किया। आहाहा! समझ में आया? क्या कहा?

मुमुक्षु : पहली लाईन है न, समस्त पापरूपी बहादुर शत्रु सेना की विजय ध्वजा को लूटनेवाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं परमभाव ऐसा है कि उसे लूटनेवाला अर्थात् उसमें (परमभाव में) है ही नहीं। उत्पन्न ही नहीं होता, वहाँ लूटनेवाला कहना, यह तो अपेक्षा से कहा है। त्रिकाल कारणपरमात्मा उस **शत्रुसेना की विजय-ध्वजा को लूटनेवाले,...** आहाहा! ऐसे भाव को कभी ग्रहण नहीं करता। वह लूटनेवाला तो पर्याय से बात की है। लूटा नहीं। पर्याय में लुटारा हुआ, संसार, विकार, नरकगति, मनुष्यगति, सिद्धगति, मोक्षमार्ग, समकित—यह सब पर्यायों में है; द्रव्यस्वभाव में यह है नहीं। उसे लूटनेवाला कहा है; अर्थात् कि उसमें है नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग! भारी सूक्ष्म था न? हिन्दी में चलता था, परन्तु हिन्दी लोग साधारण थे, समझते नहीं थे। उठकर चले जाते थे। यह बात कहाँ? व्रत करना हो, अपवास करना हो, मन्दिर बनाना हो, फिर पूजा करनी हो, रथयात्रा निकालनी हो, पैसा खर्च करना हो तो ऐसा समझ में तो आवे।

मुमुक्षु : क्या समझ में आवे....

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में तो आवे कि यह भटकने का मिथ्यात्वभाव है, राग है। है तो मिथ्यात्वभाव। राग को अपना मानना, वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! चाहे तो परमात्मा की भक्ति का राग हो या पंच परमेष्ठी को याद करने का, स्मरण का राग हो, अरे! णमो सिद्धाणं... सिद्ध को नमस्कार करने का विकल्प और राग हो। आहाहा! वह जीव के द्रव्यस्वभाव में है नहीं। वह सब पर्यायों की क्रीड़ाएँ हैं। सवेरे कहा था न कि ६२वीं गाथा (पंचास्तिकाय) में विकार षट्कारकरूप से परिणमता है, वह पर्याय में परिणमता है और मोक्ष जो होता है, वह पर्याय में होता है। सवेरे षट्कारक आया था न? कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान इत्यादि। वह सब पर्याय है। द्रव्य तो त्रिकाली एकरूप है। उसे नहीं ग्रहना, नहीं छोड़ना। आहाहा! ऐसा उपदेश है, भाई! और यहाँ पूरे दिन चले-यह छोड़ो, यह रखो, यह छोड़ो और यह रखो। यहाँ कहते हैं कि राग को भी ग्रहण नहीं किया और राग को भी छोड़ना नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है, भाई! अनजाने को पूरी नयी बात लगती है। यह तो बहुत वर्ष हो गये। बहुत सुननेवाले। भले उन्हें जँचे, न जँचे, परन्तु सुनते तो हैं न! प्रेम से बहुत सुनते हैं। मार्ग ऐसा कुछ है। कुछ दूसरा मार्ग कहते हैं। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, भाई का प्रश्न ऐसा कि जब उसमें नहीं तो फिर लूटनेवाला कहाँ से आया ? ऐसा कहते हैं। आत्मा में विकार नहीं, फिर **बहादुर शत्रुसेना की विजय-ध्वजा को लूटनेवाले,...** कहाँ से आया ? लूटनेवाले का अर्थ कि उसमें है नहीं। आहाहा ! बहादुर सेना जो विकार की है, वह वस्तु में है नहीं। भगवान बहादुर है। वह बहादुर सिंह है। आहाहा ! बहादुर सिंह, उसने नहीं संसार को ग्रहण किया, उसने नहीं अपने त्रिकाली स्वभाव को छोड़ा। आहाहा ! एकरूप त्रिकाल है, उसे पकड़ना, उसे ध्येय में लेना, उसे ध्यान की पर्याय में ध्येय में बनाना। उस द्रव्य में संसार नहीं है और मोक्ष भी नहीं है। आहाहा ! जो पर्याय उसे पकड़ती है, वह पर्याय भी उसमें नहीं है। अरे ! यह क्या है ? कब यह जैनधर्म क्या है ? अरे रे ! आहाहा ! अनन्त काल से दु:खी होकर चौरासी के अवतार में भटकता है। दु:खी है, रंक है, भिखारी है, दरिद्र है दरिद्र। आहाहा ! अनादि का दरिद्र है। अपने ऋद्धि का नकार करके और जो उसमें नहीं है, वह ऋद्धि मेरी है—ऐसा मानते हैं, वे सब दरिद्र—भिखारी हैं। आहाहा !

अपने महाप्रभु की ऋद्धि अन्दर भरी है। उसके सन्मुख तो झंखना करता नहीं। अरे ! झंखना करता नहीं। आहाहा ! उसमें नजर करता नहीं और जिसमें तीन काल में नहीं, ऐसे विकारभाव और उसके फलरूप से गति। इसके द्रव्यस्वभाव में नहीं, उनकी लीनता में अनादि से रम रहा है। आहाहा ! कहो, देवीलालजी ! क्या करना, इससे सरल दूसरा मार्ग होगा या नहीं ? या ऐसा ही मार्ग होगा ? बहुत जगह तो सरल मार्ग चलता है। सम्मेदशिखर की यात्रा करो। सम्मेदशिखर की यात्रा करो तो ४९ भव में मोक्ष जाओगे। ये कौन से साधु कहलाते हैं वे ?

मुमुक्षु : महावीरकीर्ति।

पूज्य गुरुदेवश्री : महावीरकीर्ति। महावीरकीर्ति यहाँ आये थे। फिर उनके पास पुस्तक थी। जैसे श्वेताम्बर में शत्रुंजय माहात्म्य है न ? शत्रुंजय माहात्म्य। इसी प्रकार उनके पास सम्मेदशिखर माहात्म्य पुस्तक थी। फिर आहार करके घूमता था, वहाँ बैठा। तब यह बात निकली कि सम्मेदशिखर की यात्रा करने से... हमारे पास एक पुस्तक है, उसमें ऐसा लिखा है कि ४९ भव में मोक्ष जाता है। (हमने) कहा, यह वीतराग की वाणी नहीं है। पर के दर्शन से भव का अभाव कहे, वह वाणी वीतराग की नहीं है। वह अन्यमती की, जैन

के अतिरिक्त अन्यमती की वाणी है। आहाहा! फिर तो कहे, आहाहा! आत्मा की बात... परन्तु पहले कहा सम्मेदशिखर के दर्शन करने से ४९ भव में मोक्ष जाएगा। वह सम्मेदशिखर नहीं, यह सम्मेदशिखर। आहाहा!

यहाँ ९९ बार ऋषभदेव भगवान आये थे। शत्रुंजय की ९९ यात्रा करे। उठ-बैठ चढ़कर ९९ करे तो उसका धर्म और मोक्ष हो जाता है। कहते हैं कि ९९ बार क्या, अनन्त बार ऊपर चढ़ और उतर न, वह पुण्य बन्धन है, संसार है; जन्म-मरण के अन्त का अंश भी बिल्कुल उसमें नहीं है। अब ऐसी बातें! वहाँ शत्रुंजय माहात्म्य आया कि उसके दर्शन करके और नीचे चाहे जितने जीव हों परन्तु सुरक्षा से रखे तो महालाभ होता है, ऐसा माहात्म्य है। सम्मेदशिखर का ऐसा माहात्म्य है। हमने पढ़ा नहीं था परन्तु उन्होंने कहा। ४९ भव में मोक्ष जाता है। कहा, ४९ भव में मोक्ष जाता है, पर के दर्शन से मोक्ष जाए— यह बात वीतराग की नहीं है।

सर्वज्ञ परमात्मा तो स्वद्रव्य आत्मा के दर्शन, ज्ञान और उसका आश्रय, इससे भवभ्रमण मिटेगा, (ऐसा कहते हैं)। परद्रव्य तीन लोक के नाथ का आश्रय करे तो भी शुभभाव है, ऐसी बात है, बापू! कहो, चन्दुभाई! अब चन्दुभाई को... मन्दिर बनाना है। यह भाव होता है परन्तु यह शुभभाव है परन्तु वह शुभभाव है, वह धर्म नहीं है। वह तो पाप से बचने के लिये, अशुभ से बचने के लिये शुभभाव होता है, आता है। ज्ञानी को भी आता है परन्तु वह बन्धन है, ऐसा मानते हैं। मेरी कमजोरी है और मैं अन्दर में अभी जा नहीं सकता; इसलिए मेरी कमजोरी के कारण वह शुभभाव है। ऐसी बात सुनना कठिन पड़ती है। कहो, शान्तिभाई! कठिन पड़े उसे श्रद्धा में कब लाये और आचरण कब करे? अरे! प्रभु! जिन्दगी चली जा रही है, मौत की नजदीकता है। पचास-साठ वर्ष गये, उतने अब किसी को जानेवाले नहीं हैं। मृत्यु के समीप है। आहाहा!

भगवान का यह उपदेश, तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव की यह वाणी है। वह परमभाव त्रिकाली भाव, ज्ञायकभाव, परमपारिणामिकभाव, ध्रुवभाव, नित्यभाव, सच्चिदानन्दभाव, अक्षयभाव, अकलभाव, अगम्यभाव—ऐसा जो ध्रुवस्वभाव... आहाहा! वह सम्यग्दर्शन का विषय है, वह भाव कभी इसने छोड़ा नहीं है और पुद्गलजनित / निमित्त है। संयोगजनित कहा है न? पाठ में। **संयोग से जनित...** कहा है न? **विभावपुद्गल**

-द्रव्य के संयोग से जनित... कर्म है, वह विभावपुद्गल है। कर्म है, वह स्वभाविक पुद्गल नहीं। कर्म के परमाणु बहुत, वह विभावपुद्गल है। विभाविक। वह विभाविक पुद्गल संयोगी चीज़ है। उस संयोग के निमित्त से स्वयं अपने से विकार करता है। वह संयोग विकार नहीं कराता तथा संयोग नहीं है, ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है।

और (३) निरंजन सहजज्ञान-सहजदृष्टि-सहजचारित्रादि स्वभाव धर्मों के आधार-आधेय सम्बन्धी विकल्पों रहित,... आहाहा! प्रभु राग से तो रहित है। उसका स्वभाव त्रिकाल, परन्तु आत्मा आधार है और गुण उसमें आधेय हैं। उसमें रहते हैं - ऐसे गुण-गुणी का भेद, ऐसे विकल्प भी वस्तु में नहीं हैं। आहाहा! ऐसी बातें! अब ऐसा उपदेश है। क्या कहा यह? **निरंजन सहजज्ञान...** त्रिकाली। **सहजदृष्टि...** यहाँ दृष्टि ली है। **सहजचारित्रादि...** स्वभाविक आनन्द, शान्ति, वीतराग आदि। **स्वभाव धर्मों...** स्वभाव धर्मों। स्व-भाव। स्व का-अपना भाव, वह धर्म। ऐसे **स्वभाव धर्मों के आधार...** उन धर्मों के आधार द्रव्य और धर्म, वे आधेय। ऐसा **आधार-आधेय सम्बन्धी विकल्पों रहित,...** ऐसे विकल्प से रहित प्रभु अन्दर है। आहाहा! अन्दर है या नहीं?

बहुत लोग ऐसा कहते हैं कि घर का किया है, कल्पना से अर्थ करते हैं। शास्त्रों के अर्थ कल्पना से किये हैं। अर्थात् यह... अरे! प्रभु! प्रभु! क्या हो? भगवान का विरह पड़ा, परमात्मा की वाणी रही परन्तु वाणी के अर्थ करनेवाले उल्टी दिशा में चले गये। जो भगवान को कहना है, उसे अपनी दृष्टि से कहना है। भगवान को कहना है, उस दृष्टि से नहीं परन्तु अपनी दृष्टि से खतौनी कर कहना है। आहाहा! ऐसा मार्ग है। यह स्वधर्म जो है, धर्मी ऐसा जो आत्मा, उसका स्वभाव। धर्मी अर्थात् स्वभाववान। उसका स्वभाव, स्वभाविक ज्ञान-दर्शन त्रिकाल स्वभाव, ऐसे जो **आधार-आधेय सम्बन्धी विकल्पों...** यह आत्मा, आधार और गुण, आधेय हैं। आहाहा! कहो।

अब तो यहाँ कहते हैं कि पानी बर्तन के आधार से रहता है। इनकार करते हैं। कलश पानी का कलश है न? उस कलश के आधार से पानी उसमें रहता है, यह बात एकदम मिथ्या है। चन्दुभाई! ऐसी बातें हैं। क्योंकि पानी के परमाणु जो हैं, अन्दर एकेन्द्रिय जीव है, वह अलग। परन्तु परमाणु जो हैं, वे स्वतन्त्र परमाणु हैं। उन परमाणुओं को दूसरे का आधार नहीं है। उनका आधार-आधेय स्वयं में ही है। षट्कारक परमाणु के षट्कारक,

वह अधिकरण नाम का गुण है; इसलिए परमाणु, परमाणु के अधिकरण के आधार से रहे हैं। पानी के परमाणु कलश के आधार से नहीं। यह कोई बात!

मुमुक्षु : कलश सिर के आधार से....

पूज्य गुरुदेवश्री : कलश भी सिर के आधार से नहीं है। यह टोपी भी सिर के आधार से रही नहीं है। अर..र..र! पागल कहे। तो पागल है न? पागल लोग अभी तक हो गये, ये ऐसा सुनकर पागल कहते हैं। आहाहा! यह चश्मा है, वह नाक के आधार से नहीं रहा है।

मुमुक्षु : कान के आधार से रहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कान के आधार से नहीं रहा है। आहाहा! यह अभी चश्मा आया है। वह किसका कहलाता है? प्लास्टिक का। प्लास्टिक का आता है न? भाई लाये हैं। मुम्बई से विमल लाया है। प्लास्टिक का हल्का। वह काँच का होता है, यह तोड़दार होता है। आहाहा! क्योंकि एक-एक परमाणु में षट्कारक गुण भरे हैं, कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण। उसके आधार से वह परमाणु रहते हैं। परमाणु के आधार से। बर्तन के आधार से घी या घी के आधार से बर्तन? बर्तन के आधार से घी होवे तो घी नीचे गिर जाता है और बर्तन तो रह जाता है। यदि उसके आधार से हो तो बर्तन भी साथ में गिर जाना चाहिए। घी के परमाणु को घी का आधार है। जहाँ हो, वहाँ अपने आधार से रहे हैं। यह तो बहुत स्थूल बात है। अभी यह बात बैठती नहीं। आहाहा!

यहाँ तो आत्मा जो आधार त्रिकाली द्रव्य है, जिसमें ज्ञान-दर्शन-आनन्द आदि गुण हैं, वे आधेय हैं और भगवान आधार है - ऐसे विकल्प भी वस्तु में नहीं हैं। चन्दुभाई! पकड़ में आये ऐसा है। भाषा सादी है, भाव भले भगवान के घर के गहरे हों। आहाहा! अरेरे! एक-एक द्रव्य, भगवान ने केवलज्ञान में परमात्मा ने अनन्त द्रव्य देखे हैं। वे अनन्त द्रव्य जड़ और चेतन सब स्वतन्त्र देखे हैं। एक-एक द्रव्य का आधार और आधेय उसमें है, दूसरे में नहीं। आहाहा! वे रहे हैं, वे स्वयं से, स्वयं में, स्वयं के आधार से (रहे हैं)। जब उनमें भी आधार-आधेय नहीं तो भगवान आत्मा वस्तु है, वह स्वभाववान और दर्शन-ज्ञान-आनन्द जो त्रिकाली स्वभाव है, वह आधेय—ऐसा आधार और आधेय का विकल्प भी वस्तु में नहीं है। आधार और आधेय के भेद का विकल्प राग है। वह राग है। आत्मा

आधार और गुण आधेय, वह राग है। वह राग वस्तु में नहीं है। अरे! अब ऐसी बात! जिन्दगी में कभी सुनी न हो। आहाहा! यह जैनधर्म ऐसा होगा? जैनधर्म तो एकेन्द्रिय की दया पालना, छह काय की दया पालना।

मुमुक्षु : आप रोजाना कठिन-कठिन बात शास्त्र में से निकालते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भी इसमें है न? आहाहा! है या नहीं इसमें? घर की बहियाँ मिलान करते हो न? तो यह तो मिलान करो। वीतराग और शास्त्र की बहियाँ किस प्रकार है? कभी सुना नहीं, खबर नहीं और हम धर्मी हैं तथा धर्म करते हैं। समय चला जाता है, प्रभु! कोई शरण नहीं होगा। लोग धर्मी मानेंगे, इससे धर्म नहीं होगा। आहाहा! बहुत अच्छी गाथा आयी है। सवेरे (समयसार) की २९७ गाथा थी, यह मात्र ९७ है। आहाहा!

दिगम्बर सन्तों ने तो अजब-गजब काम किया है। आहाहा! ऐसी बात भरतक्षेत्र में कहीं सुनने को मिले, ऐसी नहीं है। ऐसी दिगम्बर मुनियों ने अन्तर की दशा तीन कषाय के अभाव में रहे हुए अतीन्द्रिय आनन्द के स्वाद में रहते हुए... विकल्प आया और शास्त्र रच गये। शास्त्र के कर्ता भी हम नहीं। विकल्प आया, यह उसका कार्य हमारा नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं। लिखने का कार्य, वह हमारा काम नहीं। हमने पुस्तक बनायी नहीं। बाहर प्रसिद्धि का हमारा भाव नहीं है। आहाहा! गजब बात है। ऐसी बात है। यह उस (बनिया की) बात होगी? यह तो किसके घर की है?

भाई! आधार आत्मवस्तु वस्तुतत्त्व सत्ता है न? अस्तित्व है न? मौजूदगीवाली चीज़ है न? अस्तित्ववाली चीज़ के अस्तित्ववाले भाव, मौजूदगीवाली चीज़ के मौजूदगीवाले भाव, ऐसे भाव भाववान और भाव का विकल्प करना, वह भी राग है। अकेला भेद डालना, वह भी राग है। आहाहा! कहो, ऐसा कब सुना था? झवेरचन्दभाई! आहाहा! धन्धा के कारण पहले निवृत्त नहीं थे। अब यह धन्धा दूसरे प्रकार का है। आहाहा! दुनिया से अलग प्रकार है, बापू! भगवान सबका भला करो, सब भगवान होओ। शास्त्र में तो ऐसा आता है। धर्मी जीव भावना करता है। द्रव्य का भान हुआ है, वह धर्मी जीव भावना करता है कि जैसी दशा मुझे हुई है, वैसी सबको होओ और सब परमात्मा होओ, मोक्ष होवे, दुःखी कोई न हो, भाई! संसार के परिभ्रमण में चार गति के दुःख, उस दुःख की अनन्तता में प्रभु! तुम न रहो। आहाहा! प्रभु! तुम्हारा कल्याण करो। तुम्हारा कल्याण करो। कौन? प्रभु करे

नहीं, हों! तू कर। आहाहा! ऐसी बात है। कहाँ तक ले गये हैं! आहाहा!

बहुत जगह ऐसा आता है। **आधार-आधेय सम्बन्धी विकल्पों...** विकल्प अर्थात् राग। आधार-आधेय सम्बन्धी रागरहित **सदा मुक्त...** सदा मुक्तस्वरूप ही प्रभु अन्दर है। पर्याय में माना है कि राग मैं हूँ—ऐसी मान्यता की है। स्वरूप ऐसा नहीं है। स्वरूप तो मुक्त ही है। आहाहा! देह के रजकणों से, कर्म के रजकणों से और राग के विकारी भावों से अत्यन्त भिन्न मुक्तस्वरूप प्रभु है। उसका होनापना-अस्तिपना तो मुक्तस्वरूप है। यह तो पर्याय के सम्बन्ध में उसे रागादि दिखते हैं। वस्तु के स्वरूप में रागादि कुछ है ही नहीं। आहाहा! है और फिर नहीं। पर्याय में है, वह तो-पर्याय तो अवस्था है। वर्तमान पर्याय... अब अभी पर्याय सुनी न हो। पर्याय अर्थात् द्रव्य की वर्तमान दशा। उस वर्तमान दशा में संसार... हो, वस्तु में नहीं। आहाहा! सुनते-सुनते कठिन पड़े, ऐसा लगता है।

सवेरे तो वे बेचारे सुनते-सुनते उठकर चले गये। हिन्दी पढ़ते थे परन्तु उन्हें क्या? यात्रा में और भक्ति में धर्म मानते थे। यात्रा करना, भक्ति करना, सवेरे भगवान के दर्शन करना, छह आवश्यक हो और सूत्र थोड़ा पढ़ लेना तो धर्म हो जाए। अरे! भगवान! धर्म की कला तो अलग प्रकार है, भाई! यहाँ कहते हैं, वह **सदा मुक्त...** है। प्रभु जो द्रव्यस्वभाव, वस्तुस्वभाव है। द्रव्य अर्थात् जो तत्त्व है, सत्तत्त्व आत्मा है, सद्चिदानन्द वह चिद् और आनन्द, यह तो स्वभाव है परन्तु सत् है, वह तत्त्व है। वह तत्त्व तो मुक्त ही है। आहाहा! वह सत् और चिदानन्द ज्ञानानन्द ऐसे भेद भी प्रभु! विकल्प और राग है। आहाहा!

तथा सहज मुक्तिरूपी... चैतन्यप्रभु भगवान आत्मा अन्दर विराजमान है। वह कैसा है? **सहज मुक्तिरूपी स्त्री के सम्भोग से उत्पन्न होनेवाले सौख्य के स्थानभूत—ऐसे कारणपरमात्मा को...** आहाहा! कारणपरमात्मा अर्थात् द्रव्य। नीचे (फुटनोट) है। **'स्वयं आधार है और स्वभावधर्म आधेय हैं' ऐसे विकल्पों रहित है, सदा मुक्त है और मुक्तिसुख का आवास है।** मुक्ति के सुख का आवास - निवासस्थान है। उसमें आनन्द भरा है। भगवान में अतीन्द्रिय आनन्द भरा है। यह आत्मा भगवानस्वरूप ही है। आत्मा परमेश्वरस्वरूप ही है। आहाहा! कैसे जँचे?

यहाँ तो उड़द की दाल ठीक से न हुई हो, वहाँ ढीचणियुं (पुराने समय में भोजन करते समय पैर के नीचे रखा जानेवाला लकड़ी का टुकड़ा) उड़े। उसमें और सत्ता प्रिय

रिश्तेदार आया हो। सत्ता प्रिय! जरा कड़क, छह महीने बाद विवाह करना हो और उसमें लड्डू और उड़द की दाल एकरस न हुई हो। जरा मेलवाली न हो। यह क्या किया? स्त्री सुने कहे बोलना नहीं, कहे। आहाहा! ऐसी स्थिति! अरे रे! प्रभु! तू कौन, कितना और तू कहाँ जाकर रुका है। आहाहा! तेरी महिमा उसे कहाँ बेच डाली? एक विकल्प में - राग में बेच डाली। आहाहा! सम्प्रदाय में तो बात सुनना कठिन पड़ती है। यह निश्चय की बात है... निश्चय की बात है... एकान्त है... एकान्त है... अरे! प्रभु! सुन न, एकान्त ही है। सम्यक् एकान्त त्रिकाली द्रव्यस्वभाव सम्यक् एकान्त शुद्ध मुक्त ही है। और कथंचित् मुक्त तथा कथंचित् बन्ध, ऐसा नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो सब बहिनें, लड़कियाँ ये सब आत्मा हैं। देह-देवल में अन्दर प्रभु-भगवान विराजमान है। वह मुक्तस्वरूप ही है। आहाहा! द्रव्य को आवरण होगा? द्रव्य को आवरण होवे तो द्रव्य, अद्रव्य हो जाए। द्रव्य को विकार होगा? द्रव्य को विकार हो तो द्रव्य विकारमय (हो जाए), चैतन्य अनन्त गुण का पिण्ड पवित्र है, वह विकारमय हो जाए। आहाहा! द्रव्य अर्थात् पैसा नहीं, हों! द्रव्य अर्थात् अन्दर वस्तु। त्रिकाली वस्तु है... आहाहा! उसे आवरण भी नहीं, उसे विकार नहीं, उसमें अल्पता भी नहीं। आहाहा! ऐसा... आहाहा!

मुक्ति के स्वरूपभूत, कामभूत 'स्वयं ज्योति सुखधाम' श्रीमद् में आता है। स्वयं ज्योति है, वह स्वयं से चैतन्यज्योति है। उसका कोई कर्ता-फर्ता है नहीं। ईश्वरकर्ता, आत्मा को बनाया। वस्तु बनावे? आहाहा! यह आत्मा स्वरूप से स्वयं ज्योति है और सुख का धाम है, अतीन्द्रिय आनन्द का स्थान-खेत है। जहाँ अतीन्द्रिय आनन्द पकता है। आहाहा! यह विषयसुख, यह सुख, वह तो दुःख का-जहर का प्याला है। पैसे में राग हो, प्रेम हो, स्त्री में, पुत्र में, परिवार में (प्रेम हो), वह तो जहर का प्याला पीता है। आत्मा के आनन्द को मार डालता है। आहाहा! ऐसी कठिन बात है। अरे! बाबा होकर तो बैठे परन्तु बाबा ही है, सुन न! यह तो कहा मुक्ति ही है, मुक्त ही है। यह दूसरा माना है। आहाहा!

एक व्यक्ति ऐसा कहता था। अमृतलाल (कहता था) कि बाबा होवे तो यह बैठे ऐसा है। परन्तु बाबा ही है। क्या कहा यह? सदा मुक्त है। बाबा तो कहीं रह गया। यह तो सदा मुक्त ही है। आहाहा! यशपालजी! ऐसी बातें हैं, भगवान! सुनना कठिन पड़े, ऐसी

है। सुनने को मिले, ऐसा नहीं। इस दुनिया को जानते हैं न? पूरी दुनिया देखी है। नब्बे वर्ष हुए। ९१ वाँ चलता है। गर्भ का ९१वाँ चलता है। जन्म के नब्बे वर्ष। आहाहा! बहुत सब देखा है, बहुत सुना है। आहाहा! बहुतों को देखा और बहुतों का परिचय किया है। मूल बात पूरी पड़ी रही। आहाहा! अब लोग विचारते हो गये हैं कि यह क्या कहते हैं?

मुक्तस्वरूप है न, प्रभु! मुक्त है तो पर्याय में मुक्त होगा। आहाहा! पुण्य-पाप (अधिकार) में आता है न? भाई! ऐसा कि बन्धभाव है, वह तो बन्धभाव ही होगा। यह तो मुक्तस्वरूप है तो इससे मुक्त होगा। आहाहा! पुण्य-पाप के भाव तो बन्धस्वरूप है, तो बन्धस्वरूप में से तो बन्ध होगा। संसार के भटकने के भाव होंगे और आत्मा मुक्तस्वरूप है तो उसके आश्रय से मुक्तपना प्रगट होगा। मुक्तस्वभावी आत्मा है। आहाहा! ऐसा एक-एक बोल कठिन पड़ता है। अनजाने लोग, भाषा अनजानी, भाव अनजाने। ऐसा कहाँ से निकाला होगा? यह शास्त्र कहीं सोनगढ़ के हैं? यह तो अनादि के शास्त्र चले आते हैं। आहाहा! तीर्थंकर केवली का अभिप्राय तो अनादि का चला आता है। कुन्दकुन्दाचार्य ने शास्त्र रचे हैं, इनमें वह अभिप्राय रखा है। आहाहा!

सदा मुक्त तथा सहज मुक्तिरूपी स्त्री के सम्भोग से उत्पन्न होनेवाले सौख्य के स्थानभूत.... उस अतीन्द्रिय आनन्द का स्थान है। वह जगह... वह जगह... वह जगह... जैसे चावल के उत्पन्न होने की जगह अलग होती है और क्या कहा जाता है? (वह भूल गये।) कलथी। कलथी उत्पन्न होने की जमीन अलग होती है। चावल उत्पन्न होने की जमीन अलग और ऐसे चावल यह आत्मा, स्पष्ट दशा उत्पन्न होने की मुक्तदशा में, उसका स्थान मुक्त है। मुक्तपना उत्पन्न होने का स्थान मुक्त है। आहाहा! अब एक घण्टे में कितना याद रखना? सब अनजाना लगता है। पूरे दिन धूल-धमाका करता हो। दाने का व्यापारी दाना, बोरियाँ। यह गुणी आत्मा नहीं। गुणी आत्मा नहीं। गुणी, गुणी अर्थात् चावल की बोरी, चावल की बोरी और गेहूँ की बोरी। पूरे दिन बोरी... बोरी.. बोरी.. यह गुण एक ओर पड़ा रहा। आहाहा! गुणी कहते हैं न? यह चावल भरे हों न, दाल भरी हो, उसे गुणी (बोरी का गुजराती शब्द) कहते हैं। वहाँ हमारे पालेज में दुकान है। बड़ा व्यापार है। मैं पाँच वर्ष वहाँ रहा हूँ। घर की ही दुकान है। वह ६३ से ६८ वर्ष, पाँच वर्ष दुकान चलायी। अभी तो बड़ी दुकान है। चालीस लाख रुपये हैं। चार लाख की आमदनी है। पालेज में बड़ी

दुकान है। चन्दुभाई जानते हैं। बड़ोदरा के साथ पालेज है। मनसुख... धूल और धाणी। दुकान अकेला पाप का पोटला है। यह दुकान अलग प्रकार की है।

कहते हैं कि एक आनन्द का स्थान है। अतीन्द्रिय आनन्द का धाम है। अतीन्द्रिय आनन्द पकते देखना हो तो इस आत्मा को देखो। राग में देखने से तुझे दुःख पकेगा। आहाहा! अरे! परद्रव्य को देखने से, भगवान तीन लोक के नाथ को देखने से भी राग होगा। आहाहा! कहा है न, अष्टपाहुड़ में? '**परदव्वादो दुग्गई**' ऐसा कहा है। '**परदव्वादो दुग्गई**' इस स्वद्रव्य के अतिरिक्त परद्रव्य, तीन लोक के नाथ हों या स्त्री, परिवार हो; पर के प्रति लक्ष्य जाने से राग होगा, वह परभाव है, दुर्गति है; वह चैतन्य की गति नहीं है। आहाहा! ऐसा सुना नहीं होगा। कठिन पड़ता है। राग होता है। अशुभ से बचने के काल में राग होता है, परन्तु वह शुभ स्वयं है, वह बन्ध का कारण है। आहाहा! जिसे अभी लोग धर्म मानते हैं और धर्म का कारण है, ऐसा मानते हैं और ऐसा मनवाते हैं। क्या हो? तीन लोक के नाथ की वाणी तो दूसरी है। यह तो मुक्ति के सुख का स्थान है।

ऐसे कारणपरमात्मा को निश्चय से निज निरावरण... आहाहा! भगवान कारणपरमात्मा। सन्तों को वाणी कहते जरा शर्म आती है। आहाहा! क्या वाणी कहना? उसे रचना। आहाहा! जिसमें वाणी नहीं, विकल्प नहीं, उसे वाणी द्वारा कहना... आहाहा! यह कारणपरमात्मा जो द्रव्य-वस्तु है। आत्मा त्रिकाल वस्तु है। **निश्चय से निज निरावरण...** निश्चय से निज-स्वयं **निरावरण परमज्ञान द्वारा...** निरावरण परमज्ञान द्वारा **जानता है...** आहाहा! जानने की शक्ति त्रिकाल निरावरण जानने की शक्ति है।

भगवान आत्मा में केवलज्ञान भरा है, तो त्रिकाल निरावरण जानने की यह शक्ति है। आहाहा! **और उस प्रकार के सहज अवलोकन द्वारा...** दर्शन (-**सहज निज निरावरण परमदर्शन द्वारा) देखता है;...** यह नियमसार में पहले आ गया है। पहले अधिकार में (आ गया है)। अन्दर दर्शन और ज्ञान है, वह देखने और जानने का स्वभाव ही है। वह देखता और जानता है। क्रिया भले न हो परन्तु वह देखता और जानता है, ऐसा उसका स्वभाव है। आहाहा! किसी का करना और किसी से कुछ लेना, ऐसा वस्तु के स्वरूप में नहीं है। आहाहा!

निज निरावरण परमज्ञान द्वारा जानता है और उस प्रकार के सहज अवलोकन

द्वारा (-सहज निज निरावरण परमदर्शन द्वारा) देखता है; वह कारणसमयसार मैं हूँ... लो, यहाँ तो यह कहते हैं। छद्मस्थ मुनि, पंचम काल के। **वह कारणसमयसार मैं हूँ...** द्रव्यस्वभाव, वह मैं हूँ। कारणसमयसार, वह मैं हूँ। आहाहा! पर्याय और राग मैं हूँ—ऐसा नहीं। पर्याय जो अवस्था है, वह ऐसा जानती है कि मैं कारणसमयसार हूँ। आहाहा! **ऐसी सम्यग्ज्ञानियों को...** धर्मी जीव को, सम्यग्ज्ञानी जीव को, सच्चे ज्ञानी जीव को **सदा भावना करना चाहिए।** आहाहा! तो खाना कब? पीना कब? धन्धा कब करना?

मुमुक्षु : यह खुराक नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह कौन कर सकता है? होनेवाला हो, वह हुआ करता है। आहाहा! उसमें विकल्प आता है, उसका कर्ता भी आत्मा कहाँ है? आहाहा!

वह कारणसमयसार मैं हूँ—ऐसी सम्यग्ज्ञानियों को सदा... सदा भावना करना चाहिए। गजब है। किसी समय भी व्यवहार मेरा, व्यवहार से लाभ होता है, यह भावना ज्ञानी की नहीं है। विशेष कहेंगे.... (***श्रोता :*** प्रमाण वचन गुरुदेव!)